|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 9: राजविद्याराजगुह्ययोग

1/2 (श्लोक 1-10), रविवार, 12 मार्च 2023

विवेचक: गीता विशारद श्री श्रीनिवास जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/rlqRbnAoufU

गूढ़ ज्ञान और सर्वज्ञात पिता परमात्मा के अस्तित्व की पहचान

परंपरागत प्रार्थना, दीप प्रज्वलन और गुरु वंदना से आज का सत्र प्रारम्भ हुआ। हम सब भाग्यशाली हैं जिन्हे गीता परिवार के माध्यम से भगवद्गीता के चिन्तन का अवसर प्राप्त हुआ है। नवां अध्याय "**राजविद्या राजगुह्ययोग**" के नाम से जाना जाता है। भगवद्गीता में अठ्ठारह अध्याय हैं, यह अध्याय मध्य में स्थित है मानो गीताजी का हृदय हो।

यह ज्ञानेश्वर महाराज का सबसे प्रिय अध्याय रहा है। कहा जाता है कि संजीवनी समाधि के समय ज्ञानेश्वर महाराज ने यही अध्याय अपने सामने खोल कर रखा था। इसके पहले दो श्लोकों में अध्याय का महत्त्व बताया गया है। यहाँ भगवान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात बताते हैं अतः इसे बहुत ही सावधानी से पढ़ना और समझना आवश्यक है।

ज्ञानेश्वर महाराज ने अध्याय का महात्म्य बहुत ही सुंदरता से प्रस्तुत किया है-
तरी अवधान एक द्यावे, आणि सर्व सुखास पात्र व्हावे
हे प्रतिज्ञा वचन ऐकावे, जन हे हो माझे

जिस प्रकार किसी भी महत्त्वपूर्ण बात से पहले Attention please कहा जाता है। पहले दो श्लोक हमें जागृत करते हैं ताकि पूरा अध्याय हम रुचिपूर्वक पढ़ें और समझें।

9.1

श्रीभगवानुवाच
इदं(न्) तु ते गुह्यतमं(म्), प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं(व्ँ) विज्ञानसहितं(यँ), यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥9.1॥

श्रीभगवान् बोले -- यह अत्यन्त गोपनीय विज्ञान सहित ज्ञान दोष दृष्टि रहित तेरे लिये तो (मैं फिर) अच्छी तरह से कहूँगा, जिसको जानकर (तू) अशुभ से अर्थात् जन्म-मरण रूप संसार से मुक्त हो जायगा।

विवेचन: इदं = अभी, इसी समय, गुह्य = गोपनीय,

भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को अपने हृदय की अत्यन्त गोपनीय बात बताने जा रहे हैं। अपने हृदय की बात किसी निकटवर्ती को ही बताई जा सकती है। अर्जुन श्रीकृष्ण के प्रिय मित्र, शिष्य थे। हमें अपने आप को भाग्यशाली मानना चाहिए क्योंकि अर्जुन के माध्यम से भगवान ने हम सब के लिए ज्ञान का भण्डार खोल दिया है इसलिए हम भी भगवान के निकट ही हैं।

अर्जुन को ही यह गोपनीय ज्ञान बताने का एक और कारण है उनका असूय होना अर्थात उनकी दृष्टि दोष रहित थी, उनका मन निर्मल था। जब कोई ईर्ष्या के कारण दूसरों में दोष देखता है उस भावना को अनसूय होना कहते हैं।

यहाँ भगवान ज्ञान और विज्ञान दोनों के विषय में बतायेंगे। सातवें अध्याय, ज्ञानविज्ञानयोग में भी भगवान ने इस बारे में बताया है।

ज्ञान तीन प्रकार का माना जाता है-

१. सामान्य ज्ञान : जिसे इन्द्रियों द्वारा अनुभव किया जा सकता है, देखना सुनना, स्वाद, सूंघना आदि

२. विज्ञान : विशेष ज्ञान की अनुभूति, प्रकृति को गहराई से जानना, जैसे मनुष्य शरीर कैसा है, उसके अवयव कैसे काम करते हैं, या, कोई भी उपकरण कैसे काम करता है,

३. आत्मज्ञान: सच्चा ज्ञान, स्वयं ही स्वयं को देखना, पहचानना

समर्थ गुरु रामदासजी कहते हैं, **"पाहणे आपणासी आपण, या नावें ज्ञान "**
इसका अर्थ हमारे लिए आईने वाले रूप को जानना नहीं अपितु सैद्धांतिक रूप से अपने आप को जानना, मैं कौन हूँ। यह मेरा शरीर है, ऐसा कहने वाला मैं कौन हूँ? मेरा कुछ अलग अस्तित्व है, मैं शुद्ध आत्मतत्त्व हूँ, शरीर नष्ट हो जाने पर भी मैं नष्ट नहीं होता, यह अनुभूति करना आवश्यक है। इससे हम बन्धन मुक्त हो सकते हैं। सांसारिक बन्धन अशुभ होते हैं। एक रसगुल्ले की मिठास का अनुभव उसे खाने से ही होता है उसके वर्णन से नहीं।

हम जिस जगत में रहते हैं, वह निरन्तर बदलता रहता है। संसार या जगत को परिभाषित कर सकते हैं-

ज= जायते,
ग= गच्छति
त= तिष्ठति,

फिर संसरति इति संसार:

संसार में कुछ भी स्थिर या स्थाई नहीं है। हमारे शरीर की कोशिकाएँ हर क्षण बनती रहती हैं और मरती रहती हैं। पृथ्वी घूम रही है, सब कुछ बदलता रहता है।

कहा भी गया है-

you can't wash your hands in the same river twice

नदी बहती रहती है, पानी बदलता रहता है, जितनी बार हाथ धोएंगे पानी हमेशा नया ही होगा।

जगत परिवर्तनशील है। मात्र ज्ञान या आत्मतत्त्व ही स्थिर है। इस आत्मतत्त्व को जानने के लिए क्या करना चाहिए?

9.2

राजविद्या राजगुह्यं(म्), पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं(न्) धर्म्यं(म्), सुसुखं(ङ्) कर्तुमव्ययम्।।9.2।।

यह (विज्ञान सहित ज्ञान अर्थात् समग्र रूप) सम्पूर्ण विद्याओं का राजा (और) सम्पूर्ण गोपनीयों का राजा है। यह अति पवित्र (तथा) अतिश्रेष्ठ है (और) इसका फल भी प्रत्यक्ष है। यह धर्ममय है, अविनाशी है (और) करने में बहुत सुगम है अर्थात् इसको प्राप्त करना बहुत सुगम है।

विवेचन: ज्ञान के विषय में स्वयं भगवान ने गीताजी में कहा है -

न हि ज्ञानेंन सदृशं, पवित्रमिह विद्यते ।

ज्ञान पवित्र है, यह विद्याओं का राजा है, जिस मार्ग से हम आत्मज्ञान प्राप्त कर सकते हैं वही राजविद्या है।

दसवें अध्याय, विभूति योग, में **अध्यात्म विद्या विद्यानाम्,** आत्मज्ञान प्राप्त करने वाली यह विद्या पवित्र और सर्वश्रेष्ठ है। भगवान कहते हैं कि इस ज्ञान को समझना कठिन नहीं, सरल है। जब इसका प्रत्यक्ष अनुभव करेंगे तब इसे सहजता से प्राप्त कर सकेंगे। धर्म या कर्त्तव्य जब आचरण में लाएँगे तो सुख प्राप्त होगा। आत्मज्ञान अव्यय है, कभी कम नहीं होता, अविनाशी है, यह नित्य नूतन है, कभी पुराना या बासी नहीं होता। यह पवित्र है, गोपनीय है।

हर गोपनीय बात पवित्र नहीं होती, **every secret need not be sacred.** परन्तु आत्मज्ञान पवित्र और गोपनीय दोनों ही है। अतः इसको सावधानी से सुनना चाहिए। आत्मज्ञान को आचरण में नहीं लाने से क्या होगा?

9.3

अश्रद्दधानाः(फ्) पुरुषा, धर्मस्यास्य परन्तप।
अप्राप्य मां(न्) निवर्तन्ते, मृत्युसंसारवर्त्मनि।।9.3।।

हे परंतप! इस धर्म की महिमा पर श्रद्धा न रखने वाले मनुष्य मुझे प्राप्त न होकर मृत्युरूप संसार के मार्ग में लौटते रहते हैं अर्थात् बार-बार जन्मते-मरते रहते हैं।

विवेचन: भगवान अर्जुन से कहते हैं कि हे परंतप अर्जुन,
श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं, जो श्रद्धा से ज्ञान प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है उसे ही ज्ञान प्राप्त होता है। ज्ञान के नेत्र तभी खुलते हैं जब श्रद्धा हो।

गणित की कक्षा में अध्यापक बिंदु की परिभाषा बताते हैं कि बिंदु वह है जिसकी लम्बाई, चौड़ाई और घेरा नहीं होता है। एक विद्यार्थी यह मानने को तैयार नहीं है कि बिंदु का कोई अस्तित्व ही नहीं है तो उसे अध्यापक जी कहते हैं कि श्रद्धा रखना आवश्यक है, तभी सीख पाओगे।

परमाणु का सूक्ष्म रूप दिखता नहीं है परन्तु वैज्ञानिकों ने इस पर विश्वास किया और atom bomb बन गया। प्रत्यक्ष प्रयोग करने से ही बात सिद्ध होती है।

जो श्रद्धा नहीं रखते उन्हें ज्ञान (भगवान) की प्राप्ति नहीं होती। वे जन्म- मृत्यु के चक्र में ही फंस कर रह जाते हैं। मनुष्य शोक, मोह और भय के जाल में ही उलझा रहता है।

शोक भूतकाल का दुःख होता है,
वर्तमान मोह या लोभ, और अधिक पाने की इच्छा
भविष्य कुछ पाने या न पाने का भय।

गोबर का कीड़ा गोबर को ही अपना संसार मान लेता है, उसे वही अच्छा लगता है।

यहाँ तक तो भगवान ने ज्ञान का महत्त्व और उसका फल भी बताया। आरम्भ में इसको समझना कठिन लगता है परन्तु जैसे-जैसे हम इसकी गहराई में उतरते हैं, सहजता से इसे समझ पाते हैं। आरम्भ में कुछ बातें सरल हैं, लेकिन आगे-आगे कठिन होती जाती हैं।

जैसे- **गौ मुखी व्याघ्र अर्थात् गाय के वेश में सिंह, परन्तु भगवद्गीता सिंह मुखी गौमाता है**,

यह शास्त्र ही ऐसा है- आरम्भ में कठिन, भयानक परन्तु धीरे-धीरे सरल होता जाता है।

9.4

मया ततमिदं(म्) सर्वं(ञ्), जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि, न चाहं(न्) तेष्ववस्थितः।।9.4।।

यह सब संसार मेरे निराकार स्वरूप से व्याप्त है। सम्पूर्ण प्राणी मुझ में स्थित हैं; परन्तु मैं उनमें स्थित नहीं हूँ तथा (वे) प्राणी (भी) मुझ में स्थित नहीं हैं - मेरे इस ईश्वर-सम्बन्धी योग (सामर्थ्य) को देख ! सम्पूर्ण प्राणियों को उत्पन्न करने वाला और प्राणियों का धारण, भरण-पोषण करने वाला मेरा स्वरूप उन प्राणियों में स्थित नहीं है। (9.4-9.5)

विवेचन: इस श्लोक में भगवान अपना परिचय दे रहे हैं। वे पूरे विश्व में व्याप्त हैं परन्तु अव्यक्त रूप में। वे विश्व के कण-कण में हैं, दिखते नहीं हैं। जैसे वायु सब जगह है, उसमें ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, कार्बन डाई आक्साइड ये सभी गैस दिखती नहीं हैं पर विद्यमान हैं।

एक दृष्टांत से समझते हैं -
पानी से बर्फ बनती है, बर्फ पिघलकर पानी बनता है और पानी वाष्प बनता है। बर्फ और पानी तो दिखते हैं, वाष्प नहीं दिखती, उसमें स्थित पानी के कण नहीं दिखते जबकि वाष्प पानी से ही बनी है। वाष्प के रूप में पानी हवा में होता है। यह एक गिलास में बर्फ डालकर रखने से पता चलता है। बर्फ की ठंडक के कारण हवा की वाष्प ठंडी हो कर गिलास के बाहर पानी की बूंदें बनकर जमा हो जाती हैं।

भवति इति भूत: जो निर्माण होता है, जो भी हमें दिखता है वह भूत है। भूमि, संसार, समुद्र, जीव-जंतु आदि, सब मुझमें हैं परन्तु मैं उनमें नहीं हूँ। यह कैसे सम्भव हो सकता है?

भगवान आदि शंकराचार्य जी ने बड़े ही सुन्दर ढंग से कहा है-

सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्व
सामुद्रो हि तरंग: क्वचन समुद्रो न तारंग:।।3।। (षट्पदी स्तोत्रं)

सागर में लहरें हैं, लहरों का सागर नहीं। लहरें सागर में दिख रही हैं इसलिए वे हैं, परन्तु उनमें सागर नहीं होता, लहरों के बिना भी सागर तो है, उसका अस्तित्व लहरों पर निर्भर नहीं है। वैसे ही यह सृष्टि ईश्वर से है, सृष्टि से ईश्वर नहीं।

किसी भी निर्माण के पीछे दो बातें होती हैं - उपादान और कारण।
मिट्टी के घड़े में मिट्टी कारण है, मिट्टी है इसलिए घड़ा है, घड़े के कारण मिट्टी नहीं।
यही बात स्वर्णाभूषणों के लिए भी कही जा सकती है, स्वर्ण है इसलिए आभूषण हैं।

परमात्मा से विश्व निर्मित हुआ है परन्तु वे उसमें नहीं हैं जैसे, दूध में मक्खन होता है किन्तु वह दिखता नहीं है, मक्खन बनाने के लिए दूध आवश्यक है। मक्खन से दूध नहीं निकलता।

9.5

न च मत्स्थानि भूतानि, पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्न च भूतस्थो, ममात्मा भूतभावनः।।9.5।।

विवेचन : भगवान कह रहे हैं कि संसार का निर्माण तो उन्होंने किया है, वे सारे विश्व में व्याप्त हैं लेकिन जीव (भूत) उनमें नहीं है। श्रीकृष्ण अर्जुन को योगेश्वर कहकर सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि उनका अस्तित्व संसार से कहीं अधिक है।

जैसे गणित में set theory में यह कहा जाता है कि "b" is the subset of "a", "b" तो "a" में है मगर "b" के अलावा भी "a" है और "a" "b" से कहीं अधिक बड़ा है।

विश्वस्वरूप विश्वातीत भी है। यह भगवान की लीला है कि वह हैं भी और नहीं भी। सभी प्राणियों को भगवान ने धारण कर रखा है। हमें पृथ्वी धारण करती है। सूर्य की गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण पृथ्वी अपनी धुरी पर अपने ही कक्ष में सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है, भटकती नहीं है। सूर्य को कौन धारण करता है? इस ब्रह्माण्ड में अनेकों सूर्य, आकाश गंङ्गाएँ हैं, इनको किसने बनाया? ईश्वर की शक्ति से ही यह सम्भव है।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टीन ने कहा कि **E = mc2**, E= शक्ति (ऊर्जा), m= वस्तुमान (भार) ,

सरल शब्दों में कहें तो शक्ति या चैतन्य और वस्तुमान एक दूसरे में बदल सकते हैं (they are interchangeable) या फिर ऐसा भी कह सकते हैं कि चैतन्य से सब निर्माण हो कर उसी में विलीन हो जाता है।

भगवान कहते हैं कि मैं सबके हृदय में हूँ-

ईश्वरः सर्वभूतानां, हृद्देशेऽर्जुनतिष्ठति।

भगवान सभी जीवों में हैं पर उन सबसे परे हैं। वे अत्यंत सूक्ष्म हैं और सर्वत्र व्याप्त हैं। यही भगवान का परिचय है। भगवान हैं भी और नहीं भी, जब तक हम उन्हें जानेंगे नहीं, पहचानेंगे नहीं, वे नहीं हैं। उन्हें देखने के लिए देखने वाले की दृष्टि होनी चाहिए।

एक बार रमण महर्षि से किसी ने पूछा कि भगवान तो दिखते ही नहीं फिर आप कैसे कह सकते हैं कि भगवान सर्वत्र हैं। तब महर्षि ने उनसे एक कागज़ पर **God is no where** लिखने को कहा, उस व्यक्ति ने जब लिखा तो महर्षि जी ने w को थोड़ा खिसकाकर उस वाक्य को ही बदल दिया **God is now here**
कहने का तात्पर्य यह है कि देखने वाले के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है कि भगवान को हम मानते हैं या नहीं।

9.6

यथाकाशस्थितो नित्यं(वँ), वायुः(स्) सर्वत्रगो महान्।
तथा सर्वाणि भूतानि, मत्स्थानीत्युपधारय॥9.6॥

जैसे सब जगह विचरने वाली महान् वायु नित्य ही आकाश में स्थित रहती है, ऐसे ही सम्पूर्ण प्राणी मुझमें ही स्थित रहते हैं - ऐसा तुम मान लो।

विवेचन: सर्वत्र संचार करने वाली वायु आकाश में व्याप्त है, परन्तु वायु की सीमा से ऊपर आकाश है जहाँ वायु नहीं होती। जैसे

आकाश इतना विशाल है वैसे ही भगवान का स्वरूप भी विराट है। जब आकाश को नापा नहीं जा सकता तो भगवान की विशालता को समझना हमारी शक्ति से बाहर है।

अवकाश (space) भी विशाल है। वैज्ञानिकों ने उसे जानने के लिए शोध किए फिर अपनी ही शोध को गलत भी कहा क्योंकि अवकाश अनंत है। आकाश या अवकाश कितना बड़ा है यह केवल वह ही बता सकता है। ठीक ऐसे ही परमात्मा कैसे हैं, यह वे स्वयं ही जान सकते हैं।

वही परमात्मा घनीभूत होकर श्रीकृष्ण के रूप में अपनी पहचान करा रहे हैं। वे हमें अर्जुन का रथ हाँकने वाले सामान्य व्यक्ति ही दिखते हैं, परन्तु वे असामान्य हैं। अपना परिचय देना परमात्मा ने यहाँ से प्रारम्भ किया।

आकाश में धूल उड़ती है, अनेक रंग बिखरे होते हैं, इंद्रधनुष भी दिखता है, इनसे आकाश को कोई अन्तर नहीं पड़ता, वह तो वैसा ही रहता है।"आकाश मात्र एक उदाहरण है, मैने सारा विश्व धारण किया है" यह कहने वाले अर्जुन के सारथी भगवान श्रीकृष्ण की महिमा अपरम्पार है।

9.7

सर्वभूतानि कौन्तेय, प्रकृतिं(यँ) यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि, कल्पादौ विसृजाम्यहम्॥9.7॥

हे कुन्तीनन्दन ! कल्पों का क्षय होने पर (महाप्रलय के समय) सम्पूर्ण प्राणी मेरी प्रकृति को प्राप्त होते हैं (और) कल्पों के आदि में (महासर्ग के समय) मैं फिर उनकी रचना करता हूँ।

विवेचन : भगवान कहते हैं कि हे कुंतीपुत्र अर्जुन, हम उसे मानते हैं जो हमें दिखता है। यह प्रकृति हमें दिखती है, हम उसे मानते हैं, लेकिन उसका निर्माता हमें नहीं दिखता तो हम उसके अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते। यह प्रकृति भी भगवान की ही है। सभी जीव प्रकृति से निर्मित हो कर उसी में विलीन हो जाते हैं। मृत्यु के बाद हमारा नश्वर शरीर पंचतत्त्वों में विलीन हो जाता है। कल्प के आरम्भ में सृष्टि का निर्माण होता है और कल्प की समाप्ति पर विलय हो जाता है।

ब्रह्माजी का एक दिन एक कल्प और एक रात्रि भी एक कल्प के बराबर है।
एक कल्प = एक हजार चतुर्युग (सत्य युग, द्वापर युग, त्रेता युग और कलयुग)
एक चतुर्युग = त्रियालिस लाख बीस हजार वर्ष

आठवें अध्याय के सत्रहवें श्लोक में यह गणना अत्यन्त स्पष्ट है-

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः।।8.17।।

रात्रि में जब हम सोते हैं तो हमारे चारों ओर का विश्व मानों नष्ट हो जाता है, ऐसे ही ब्रह्माजी की जब रात्रि होती है तो प्रलय होती है अर्थात् सब कुछ विलय हो जाता है, परन्तु सुबह होते ही फिर सबका निर्माण होता है। ब्रह्माण्ड बड़ा है इसीलिए ब्रह्माजी के दिन और रात भी बड़े होते हैं। यह सब उसी परमात्मा की लीला है। अतः उसे जानना आवश्यक है।

9.8

प्रकृतिं(म्) स्वामवष्टभ्य, विसृजामि पुनः(फ्) पुनः।

भूतग्राममिमं(ङ्) कृत्स्नम्, अवशं(म्) प्रकृतेर्वशात्।।9.8।।

प्रकृति के वश में होने से परतन्त्र हुए इस सम्पूर्ण प्राणी समुदाय की (कल्पों के आदि में) मैं अपनी प्रकृति को वश में करके बार-बार रचना करता हूँ।

विवेचन : अपनी ही प्रकृति के कारण हम परवश हैं। जीवित रहने के लिए हमें श्वास लेना पड़ता है, खाना खाना पड़ता है, हम पानी भी पीते हैं, हम इस शरीर के बंधन में बँधे हैं।

शरीरं आद्यं, खलु धर्म साधनम्

अपना धर्म पालन करने के लिए यह देह रूपी साधन दिया गया है। जैसे यातायात के साधन होते हैं, उनका काम ठीक से हो इसलिए हमें उनकी देखभाल करना पड़ती है, वैसे ही शरीर सुचारू रुप से अपना काम करे इसके लिए उसका ध्यान रखना आवश्यक है। यदि हम यह सोचकर शरीर की देखभाल नहीं करेंगे कि मैं शरीर नहीं हूँ, मै तो आत्मा हूँ, तो यह देह अपना धर्म, कर्त्तव्य पालन नहीं कर सकता।

शरीर प्रकृति के वश में है, वह जैसा काम करवाती है हम करते हैं। इस बात को समझकर यदि हम बन्धन पहचान लें तो फिर यह बन्धन है भी और नहीं भी।
भगवान इस शरीर का निर्माण करते हैं और विलय भी करते हैं, तो क्या इसका प्रभाव उन पर होता है?

9.9

न च मां(न्) तानि कर्माणि, निबध्नन्ति धनञ्जय।
उदासीनवदासीनम्, असक्तं(न्) तेषु कर्मसु।।9.9।।

हे धनञ्जय ! उन (सृष्टि-रचना आदि) कर्मों में अनासक्त और उदासीन की तरह रहते हुए मुझे वे कर्म नहीं बाँधते।

विवेचन: भगवान इस शरीर का निर्माण करते हैं और विलय भी करते हैं, उन पर इसका प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि वे स्वयं इसे नहीं करते। हे धनन्जय, भगवान इन कर्मों से अनासक्त हैं इसलिए उनमें नहीं बँधते। अपनी ही बनाई हुई सृष्टि से भगवान को कुछ पाने की लालसा नहीं है।

बिजली के उपकरण जैसे पंखा, रेडियो आदि बिजली के बिना निरर्थक हैं क्योंकि उनको चलाने वाला चैतन्य विद्युत ही है। विद्युत तरंगे कैसे बहती हैं? पावर हाउस जहाँ बिजली का उत्पादन होता है वहाँ एक इलेक्ट्रिक पोटेंशियल निर्मित हो जाता है जिसके कारण बिजली बहती है। पोटेंशियल स्वयं तरंगे नहीं बहाता उसके कारण यह कार्य होता है।

पाँचवें अध्याय में यही बात कही गई है-
नैव किञ्चितकरोमिति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्।
पश्यञ्श्रृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन्।।

हम कार्य नहीं करते, शरीर में जो जीव है उसके कारण शरीर काम करता है। जीव का अस्तित्व आत्मा है, वह शुद्ध है, वही हमारा स्वरूप है। हमें लगता है कि सब काम हमें ही करना पड़ रहा है, वास्तव में यह कार्य तो प्रकृति करवा रही है, जो यह जानता है और समझता है कि वह तो शुद्ध आत्मा है, वह ऐसा नहीं कहता।

ज्ञानी जानता है, "**नैव किञ्चितकरोमिति**", मेरे अस्तित्व के कारण यह हो रहा है। भगवान तो सर्वव्यापी हैं, वे सब कुछ करते हुए भी कुछ नहीं करते। वे उदासीन हैं, ऊपर बैठकर सब देखते हैं। जैसे किसी ऊँची इमारत की छत से जब हम नीचे देखते हैं तो सड़क पर जो यातायात चल रहा है हम साक्षी भाव से वहाँ हैं परन्तु हम उसका हिस्सा नहीं हैं।

9.10

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः(स्), सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय, जगद्विपरिवर्तते।।9.10।।

प्रकृति मेरी अध्यक्षता में सम्पूर्ण चराचर जगत को रचती है। हे कुन्तीनन्दन ! इसी हेतु से जगत का (विविध प्रकार से) परिवर्तन होता है।

विवेचन : सारा कार्य भगवान की अध्यक्षता में होता है। बिना अध्यक्ष के कोई संस्था, सभा या राष्ट्र नहीं चल सकता। यदि राष्ट्राध्यक्ष का निधन हो जाता है तो इसका समाचार तब तक नहीं दिया जाता जब तक उनकी जगह कोई नियुक्त नहीं हो जाता। भगवान की अध्यक्षता में प्रकृति का खेल चल रहा है। अध्यक्ष जैसे सब काम नियोजित करते हैं और काम करवाते हैं, ईश्वर भी सर्वत्र हैं, प्रकृति का कार्य उनके ही कारण होता है, जिससे जगत में निरंतर परिवर्तन होते हैं।

परमात्मा को जानने का प्रयास कठिन है, उसका मार्ग आगे आने वाले श्लोकों में बताएँगे। भगवान का सही स्वरूप जानने के लिए क्या करना होगा? यह अगले सत्र में निरूपित किया जाएगा।

सत्र की समाप्ति के पश्चात् प्रश्नोत्तर सत्र का आरम्भ हुआ।

प्रश्नोत्तर सत्र

प्रश्नकर्ता- तेजस्विनी वाल्के दीदी

प्रश्नः कृष्ण सब करते हैं यह जानते हुए भी लोग विभिन्न भगवानों के मन्दिर जाते हैं, क्यों?

उत्तर : कृष्ण को एक ही रुप में जानना गलत है। वे किसी भी रूप में व्यक्त या अव्यक्त हो सकते हैं, जैसे राम, शिव, दुर्गा या अन्य कोई भी स्वरूप।
रामकृष्ण परमहंस के जीवन के एक दृष्टांत से यह बात स्पष्ट की गई। उनके दो शिष्य साकार और निराकार रूप की शक्ति को लेकर विवाद कर रहे थे। एक निराकार ब्रह्म को मानता था और दूसरा साकार रूप को। परमहंसजी उनसे पूछते हैं कि परमात्मा सर्व शक्तिमान हैं कि नहीं, दोनों हाँ में उत्तर देते हैं, तब परमहंस जी उस शक्ति की महानता बताते हुए कहते हैं कि निर्गुण निराकार और सगुण साकार रूप एक ही हैं, हम उन्हें विभाजित करते हैं। वे किसी भी रूप में व्यक्त हो सकते हैं, अतः सब जगह हमें उनका रूप देखना है। भगवान एक ही रुप में सीमित नहीं हो सकते।

प्रश्नकर्ता- अंगीकृष्ण भट्ट भैया

प्रश्नः जगत शब्द क्यों उपयोग में लाया गया? क्या हम विज्ञान पूर्ण रूप से सीख सकते हैं**?**

उत्तर : इसी अध्याय के बारहवें श्लोक में मोघाशा मोघकर्मणो इन शब्दों को कहा गया है अर्थात व्यर्थ की आशा और व्यर्थ कर्म और ज्ञान ये सब अशुभ बन्धन हैं जो इस संसार या जगत का चक्र है जिनसे हमें मुक्त होना है, यहाँ जगत का अर्थ संसार ही है। विज्ञान को ज्ञान की अनुभूति और संसार का ज्ञान प्राप्त करना कहा गया है। सूक्ष्म से स्थूल की जानकारी हासिल करना, सामान्य ज्ञान जैसे पहाड़ की ऊँचाई, नदी की गहराई आदि किसी परीक्षा तक तो ठीक है परन्तु यदि आत्मज्ञान ही प्राप्त करना हो तो व्यवहार के लिए आवश्यक विज्ञान सीखना काफी है।

प्रश्नकर्ता- अभिषेक कुसड़कर भैया

प्रश्नः ब्रह्माजी जी कल्प के अन्त में सब नष्ट कर देते हैं क्या**?**

उत्तर : ब्रह्माण्ड का विस्तार लाखों प्रकाश वर्ष है, इसलिए उनके दिन और रात भी बड़े हैं। इतनी बड़ी सृष्टि का निर्वहन करने में लाखों वर्ष लग ही जाते हैं और अन्त में प्रलय होता है।

प्रश्नः हमारे दुष्कर्म प्रकृति ने निहित किए हैं?

उत्तर : नहीं, मनुष्य अपनी इच्छा के लिए पापकर्म करता है और सारा दोष प्रकृति पर डाल देता है। अच्छे कामों का श्रेय वह स्वयं को देता है ।
जब तक यह मैं समाप्त नहीं हो जाता परमात्मा नहीं मिलेंगे।

कबीरदासजी ने क्या खूब कहा है-

जब मैं था हरी नहीं, अब हरि है मैं नाहीं,
प्रेम गली अति सांकरी, जामें दो न समाहीं।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
आइये हम सब गीता परिवार के इस ध्येय से जुड़ जायें, और अपने इष्ट-मित्र -परिचितों को गीता कक्षा का उपहार दें।

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||